0751CH16

16 चौसर का खेल व द्रौपदी की व्यथा

धृतराष्ट्र की बात मानकर विदुर पांडवों के पास आए। उनको देखकर महाराज युधिष्ठिर उठे और उनका यथोचित स्वागत-सत्कार किया। विदुर आसन पर बैठते हुए शांति से बोले–"हस्तिनापुर में खेल के लिए एक सभा-मंडप बनाया गया है, जो तुम्हारे मंडप के समान ही सुंदर है। राजा धृतराष्ट्र की ओर से उसे देखने चलने के लिए मैं तुम लोगों को न्यौता देने आया हूँ। राजा धृतराष्ट्र की इच्छा है कि तुम सब भाइयों सहित वहाँ आओ, उस मंडप को देखो और दो हाथ चौसर भी खेल जाओ।"

युधिष्ठिर ने कहा–"चाचा जी! चौसर का खेल अच्छा नहीं है। उससे आपस में झगड़े पैदा होते हैं। समझदार लोग उसे पसंद नहीं करते हैं। लेकिन इस मामले में हम तो आप ही के आदेशानुसार चलनेवाले हैं। आपकी सलाह क्या है?"

विदुर बोले–"यह तो किसी से छिपा नहीं है कि चौसर का खेल सारे अनर्थ की जड़ होता है। मैंने तो भरसक कोशिश की थी कि इसे न होने दूँ, किंतु राजा ने आज्ञा दी है कि तुम्हें खेल के लिए न्यौता दे ही आऊँ। इसलिए आना पड़ा। अब तुम्हारी जो इच्छा हो करो।"

राजवंशों की रीति के अनुसार किसी को भी खेल के लिए बुलावा मिल जाने पर उसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता था। इसके अलावा युधिष्ठिर को डर था कि कहीं खेल में न जाने को ही धृतराष्ट्र अपना अपमान न समझ लें और यही बात कहीं लड़ाई का कारण न बन जाए। इन्हीं सब विचारों से प्रेरित होकर समझदार युधिष्ठिर ने न्यौता स्वीकार कर लिया, यद्यपि विदुर ने उन्हें चेता दिया था। युधिष्ठिर अपने परिवार के साथ हस्तिनापुर पहुँच गए। नगर के पास ही उनके लिए एक सुंदर विश्राम-गृह बना था। वहाँ ठहरकर उन्होंने आराम किया। अगले दिन सुबह नहा-धोकर सभा-मंडप में जा पहुँचे।

कुशल समाचार पूछने के बाद शकुनि ने कहा–"युधिष्ठिर, खेल के लिए चौपड़ बिछा हुआ है। चलिए, दो हाथ खेल लें।"

युधिष्ठिर बोले–"राजन्, यह खेल ठीक नहीं है! बाज़ी जीत लेना साहस का काम नहीं है। जुआ खेलना धोखा देने के समान है। आप तो यह सब बातें जानते ही हैं।"

वह बोला–"आप भी क्या कहते हैं, महाराज! यह भी कोई धोखे की बात है! हाँ, यह कहिए कि आपको हार जाने का डर लग रहा है।"

युधिष्ठिर कुछ गरम होकर बोले–"राजन्! ऐसी बात नहीं है। अगर मुझे खेलने को कहा गया, तो मैं ना नहीं करूँगा। आप कहते हैं, तो मैं तैयार हूँ। मेरे साथ खेलेगा कौन?"

दुर्योधन तुरंत बोल उठा–"मेरी जगह खेलेंगे तो मामा शकुनि किंतु दाँव लगाने के लिए जो धन-रत्नादि चाहिए, वह मैं दूँगा।"

युधिष्ठिर बोले–"मेरी राय यह है कि किसी एक की जगह दूसरे को नहीं खेलना चाहिए। यह खेल के साधारण नियमों के विरुद्ध है।"

"अच्छा तो अब दूसरा बहाना बना लिया।" शकुनि ने हँसते हुए कहा।

युधिष्ठिर ने कहा–"ठीक है। कोई बात नहीं, मैं खेलूँगा।" और खेल शुरू हुआ। सारा मंडप दर्शकों से खचाखच भरा हुआ था। द्रोण, भीष्म, कृप, विदुर, धृतराष्ट्र जैसे वयोवृद्ध भी उपस्थित थे। वे उसे रोक नहीं सके थे। उनके चेहरों पर उदासी छाई हुई थी। अन्य कौरव राजकुमार बड़े चाव से खेल को देख रहे थे।

पहले रत्नों की बाज़ी लगी, फिर सोने-चाँदी के खज़ानों की। उसके बाद रथों और घोड़ों की। तीनों दाँव युधिष्ठिर हार गए। शकुनि का पासा मानो उसके इशारों पर चलता था। खेल में युधिष्ठिर बारी-बारी से अपनी गाएँ, भेड़, बकरियाँ, दास-दासी, रथ, घोड़े, सेना, देश, देश की प्रजा

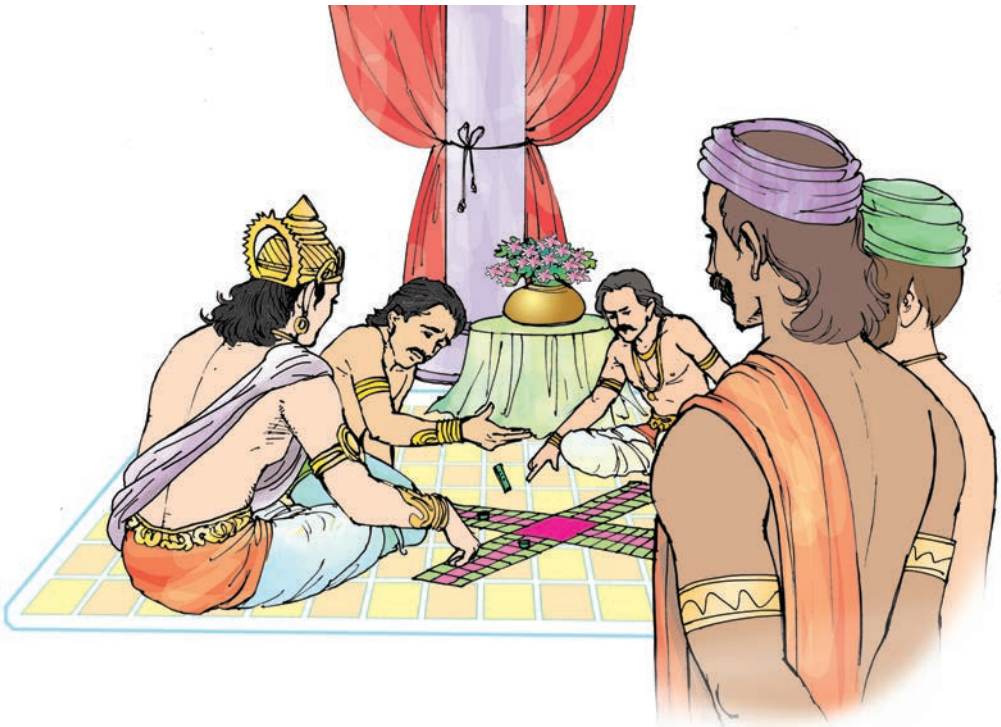

सब खो बैठे। भाइयों के शरीरों पर जो आभूषण और वस्त्र थे, उनको भी बाज़ी पर लगा दिया और हार गए।

"और कुछ बाकी है?" शकुनि ने पूछा।

"यह साँवले रंग का सुंदर युवक, मेरा भाई नकुल खड़ा है। वह भी मेरा ही धन है। इसकी बाज़ी लगाता हूँ। चलो!" युधिष्ठिर ने जोश के साथ कहा।

शकुनि ने कहा–"अच्छा तो यह बात है! तो यह लीजिए। आपका प्यारा राजकुमार अब हमारा हो गया!" कहते-कहते शकुनि ने पासा फेंका और बाज़ी मार ली।

युधिष्ठिर ने कहा–"यह मेरा भाई सहदेव, जिसने सारी विद्याओं का पार पा लिया है। इसकी बाज़ी लगाना उचित तो नहीं है, फिर भी लगाता हूँ। चलो, देखा जाएगा।"

"यह चला और वह जीता," कहते हुए शकुनि ने पासा फेंका। सहदेव को भी युधिष्ठिर गँवा बैठे।

अब दुरात्मा शकुनि को आशंका हुई कि कहीं युधिष्ठिर खेल बंद न कर दें। बोला–"युधिष्ठिर, शायद आपकी निगाह में भीमसेन और अर्जुन माद्री के बेटों से ज़्यादा मूल्यवान हैं। सो उनको बाज़ी पर आप लगाएँगे नहीं।"

युधिष्ठिर ने कहा–"मूर्ख शकुनि! तुम्हारी चाल यह मालूम होती है कि हम भाइयों में आपस में फूट पड़ जाए! सो तुम क्या जानो कि हम पाँचों भाइयों के संबंध क्या हैं? पराक्रम में जिसका कोई सानी नहीं है, उस अपने भाई अर्जुन को मैं दाँव पर लगाता हूँ। चलो।"

शकुनि यही तो चाहता था। "तो यह चला", कहते हुए पासा फेंका और अर्जुन भी हाथ से निकल गया। असीम दुर्दैव मानो युधिष्ठिर को बेबस कर रहा था और उन्हें पतन की ओर बलपूर्वक लिए जा रहा था। वह बोले–"राजन्! शारीरिक बल में संसारभर में जिसका कोई जोड़ीदार नहीं है, अपने उस भाई को मैं दाँव पर लगाता हूँ।" यह कहते-कहते युधिष्ठिर भीमसेन से भी हाथ धो बैठे।

दुष्टात्मा शकुनि ने तब भी नहीं छोड़ा। पूछा–"और कुछ?"

युधिष्ठिर ने कहा–"हाँ! यदि इस बार तुम जीत गए, तो मैं खुद तुम्हारे अधीन हो जाऊँगा।"

"लो, यह जीता!" कहते हुए शकुनि ने पासा फेंका और यह बाज़ी भी ले गया।

इस पर शकुनि सभा के बीच उठ खड़ा हुआ और पाँचों पांडवों को एक-एक करके पुकारा और घोषणा की कि वे अब उसके गुलाम हो चुके हैं। शकुनि को दाद देनेवालों के हर्षनाद से और पांडवों की इस दुर्दशा पर तरस खानेवालों के हाहाकार से सारा सभा-मंडप गूँज उठा। सभा में इस तरह खलबली मचने के बाद शकुनि ने युधिष्ठिर से कहा–"एक और चीज़ है, जो तुमने अभी हारी नहीं है। उसकी बाज़ी लगाओ, तो तुम अपने-आपको भी छुड़ा सकते हो। अपनी पत्नी द्रौपदी को तुम दाँव पर क्यों नहीं लगाते?" और जुए के नशे में चूर युधिष्ठिर के मुँह से निकल पड़ा–"चलो अपनी पत्नी द्रौपदी की भी मैंने बाज़ी लगाई!" उनके मुँह से यह निकल तो गया, पर उसके परिणाम को सोचकर वह विकल हो उठे कि 'हाय यह मैंने क्या कर डाला!'

युधिष्ठिर की इस बात पर सारी सभा में एकदम हाहाकार मच गया। जहाँ वृद्ध लोग बैठे थे, उधर से धिक्कार की आवाज़ें आने लगीं।

लोग बोले–"छि:-छि:, कैसा घोर पाप है!" कुछ ने आँसू बहाए और कुछ लोग परेशानी के मारे पसीने से तर-ब-तर हो गए। दुर्योधन और उसके भाइयों ने बड़ा शोर मचाया। पर युयुत्सु नाम का धृतराष्ट्र का एक बेटा शोक संतप्त हो उठा और ठंडी आह भरकर उसने सिर झुका लिया।

शकुनि ने पासा फेंककर कहा–"यह लो, यह बाज़ी भी मेरी ही रही।"

बस, फिर क्या था? दुर्योधन ने विदुर को आदेश देते हुए कहा–"आप अभी रनवास में जाएँ और द्रौपदी को यहाँ ले आएँ। उससे कहें कि जल्दी आए।"

विदुर बोले–"मूर्ख! नाहक क्यों मृत्यु को न्यौता देने चला है। अपनी विषम परिस्थिति का तुम्हें ज्ञान नहीं है।"

दुर्योधन को यों फटकारने के बाद विदुर ने सभासदों की ओर देखकर कहा–"अपने को हार चुकने के बाद युधिष्ठिर को कोई अधिकार नहीं था कि वह पांचालराज की बेटी को दाँव पर लगाए।"

विदुर की बातों से दुर्योधन बौखला उठा। अपने सारथी प्रातिकामी को बुलाकर कहा–"विदुर तो हमसे जलते हैं और पांडवों से डरते हैं। रनवास में जाओ और द्रौपदी को बुला लाओ।"

आज्ञा पाकर प्रातिकामी रनवास में गया और द्रौपदी से बोला–"द्रुपदराज की पुत्री! चौसर के खेल में युधिष्ठिर आपको दाँव में हार बैठे हैं। आप अब राजा दुर्योधन के अधीन हो गई हैं। राजा की आज्ञा है कि अब आपको धृतराष्ट्र के महल में दासी का काम करना है। मैं आपको ले जाने के लिए आया हूँ।"

सारथी ने जुए के खेल में जो कुछ हुआ था, उसका सारा हाल कह सुनाया।

वह प्रातिकामी से बोली–"रथवान! जाकर उन हारनेवाले जुए के खिलाड़ी से पूछो कि पहले वह अपने को हारे थे या मुझे? सारी सभा में यह प्रश्न उनसे करना और जो उत्तर मिले, वह मुझे आकर बताओ। उसके बाद मुझे ले जाना।"

प्रातिकामी ने जाकर भरी सभा के सामने युधिष्ठिर से वही प्रश्न किया, जो द्रौपदी ने उसे बताया था। इस पर दुर्योधन ने प्रातिकामी से कहा–"द्रौपदी से जाकर कह दो कि वह स्वयं ही आकर अपने पति से यह प्रश्न कर ले।"

प्रातिकामी दोबारा रनवास में गया और द्रौपदी के आगे झुककर बड़ी नम्रता से बोला–"देवि! दुर्योधन की आज्ञा है कि आप सभा में आकर स्वयं ही युधिष्ठिर से प्रश्न कर लें।"

द्रौपदी ने कहा–"नहीं, मैं वहाँ नहीं जाऊँगी। अगर युधिष्ठिर जवाब नहीं देते, तो सभा में जो सज्जन विद्यमान हैं, उन सबको तुम मेरा प्रश्न जाकर सुनाओ और उसका उत्तर आकर मुझे बताओ।"

प्रातिकामी लौटकर फिर सभा में गया और सभासदों को द्रौपदी का प्रश्न सुनाया। यह सुनकर दुर्योधन झल्ला उठा। अपने भाई दु:शासन से बोला–"दु:शासन, यह सारथी भीमसेन से डरता मालूम होता है। तुम्हीं जाकर उस घमंडी औरत को ले आओ।"

दुरात्मा दु:शासन के लिए इससे अच्छी बात और क्या हो सकती थी। उसने द्रौपदी के गुँथे हुए बाल बिखेर डाले, गहने तोड़-फोड़ दिए और उसके बाल पकड़कर बलपूर्वक घसीटता हुआ सभा की ओर ले जाने लगा। द्रौपदी विकल हो उठी। द्रौपदी की ऐसी दीन अवस्था देखकर धृतराष्ट्र के एक बेटे विकर्ण को बड़ा दुख हुआ।

उससे नहीं रहा गया। वह बोला–"उपस्थित वीरो! सुनिए, चौसर के खेल के लिए युधिष्ठिर को धोखे से बुलावा दिया गया था। वह धोखा खाकर इस जाल में फँस गए और अपनी स्त्री तक की बाज़ी लगा दी। यह सारा कार्य न्यायोचित नहीं है। दूसरी बात यह है कि द्रौपदी अकेले युधिष्ठिर की ही पत्नी नहीं है, बल्कि पाँचों पांडवों की पत्नी है। इसलिए उसको दाँव पर लगाने का अकेले युधिष्ठिर को कोई हक नहीं था। इसके अलावा खास बात यह है कि एक बार जब युधिष्ठिर खुद को ही दाँव में हार गए थे, तो उनको द्रौपदी की बाज़ी लगाने का अधिकार ही क्या था? मेरी एक और आपत्ति यह है कि शकुनि ने द्रौपदी का नाम लेकर युधिष्ठिर को उसकी बाज़ी लगाने के लिए उकसाया था। लोगों ने चौसर के खेल के जो नियम बना रखें हैं, यह उनके बिलकुल विरुद्ध है। इन सब बातों के आधार पर मैं इस सारे खेल को नियम-विरुद्ध ठहराता हूँ। मेरी राय में द्रौपदी नियमपूर्वक नहीं जीती गई है।"

युवक विकर्ण के भाषण से वहाँ उपस्थित लोगों के विवेक पर से भ्रम का परदा हट गया। सभा में बड़ा कोलाहल मच गया। यह सब देखकर कर्ण उठ खड़ा हुआ और क्रुद्ध होकर बोला–"विकर्ण, अभी तुम बच्चे हो। सभा में इतने बड़े-बूढ़ों के होते हुए, तुम कैसे बोल पड़े! तुम्हें यहाँ बोलने और तर्क-वितर्क करने का कोई अधिकार नहीं हैं।"

यह देखकर दु:शासन द्रौपदी के पास गया और उसका वस्त्र पकड़कर खींचनें लगा। ज्यों-ज्यों वह खींचता गया त्यों-त्यों वस्त्र भी बढ़ता गया। अंत में खींचते-खींचते दु:शासन की दोनों भुजाएँ थक गईं। हाँफता हुआ वह थकान से चूर होकर बैठ गया। सभा के लोगों में कंपकंपी-सी फैल गई और धीमे स्वर में बातें होने लगीं। इतने में भीमसेन उठा। उसके होंठ मारे क्रोध के फड़क रहे थे। ऊँचे स्वर में उसने यह भयानक प्रतिज्ञा की, "उपस्थित सज्जनो! मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि जब तक, भरत-वंश पर बट्टा लगानेवाले इस दुरात्मा दु:शासन की छाती चीर न लूँगा, तब तक इस संसार को छोड़कर नहीं जाऊँगा।" भीमसेन की इस प्रतिज्ञा को सुनकर उपस्थित लोगों के हृदय भय के मारे थर्रा उठे।

इन सब लक्षणों से धृतराष्ट्र ने समझ लिया कि यह सब ठीक नहीं हुआ है। उन्होंने अनुभव किया कि जो कुछ हो चुका है, उसका परिणाम शुभ नहीं होगा। यह उनके पुत्रों और कुल के विनाश का कारण बन जाएगा। उन्होंने परिस्थिति को सँभालने के इरादे से द्रौपदी को बड़े प्रेम से अपने पास बुलाया और शांत किया तथा सांत्वना दी। उसके बाद वह युधिष्ठिर की ओर मुड़कर बोले–"युधिष्ठिर तुम तो अजातशत्रु हो। उदार-हृदय के भी हो। दुर्योधन की इस कुचाल को क्षमा करो और इन बातों को मन से निकाल दो और भूल जाओ। अपना राज्य तथा संपत्ति आदि सब ले जाओ और इंद्रप्रस्थ जाकर सुखपूर्वक रहो!"

धृतराष्ट्र की इन मीठी बातों को सुनकर पांडवों के दिल शांत हो गए और यथोचित अभिवादनादि के उपरांत द्रौपदी और कुंती सहित सब पांडव इंद्रप्रस्थ के लिए विदा हो गए। पांडवों के विदा हो जाने के बाद कौरवों में बड़ी हलचल मच गई। पांडवों के इस प्रकार अपने पंजे से साफ़ निकल जाने के कारण कौरव बड़ा क्रोध-प्रदर्शन करने लगे और दु:शासन तथा शकुनि

के उकसाने पर दुर्योधन पुनः अपने पिता धृतराष्ट्र के सिर पर सवार हो गया और पांडवों को खेल के लिए एक बार और बुलाने को उनको राज़ी कर लिया। युधिष्ठिर को खेल के लिए बुलाने को फिर दूत भेजा गया। पिछली घटना के कारण दुखी होते हुए भी युधिष्ठिर को यह निमंत्रण स्वीकार करना पड़ा। युधिष्ठिर हस्तिनापुर लौटे और शकुनि के साथ फिर चौपड़ खेला। इस बार खेल में यह शर्त थी कि हारा हुआ दल अपने भाइयों के साथ बारह वर्ष तक वनवास करेगा तथा उसके उपरांत एक वर्ष अज्ञातवास में रहेगा। यदि इस एक वर्ष में उनका पता चल जाएगा, तो उन सबको बारह वर्ष का वनवास फिर से भोगना होगा। इस बार भी युधिष्ठिर हार गए और पांडव अपने किए वादे के अनुसार वन में चले गए।